

डॉ. भीमराव अंबेडकर : विधि, समानता और राष्ट्र निर्माण का दर्शन

डॉ. नरेन्द्र कुमार | असि. प्रोफेसर संस्कृत | संत तुलसीदास पी.जी
कॉलेज, कादीपुर, सुलतानपुर

Email Id - narendraindic@gmail.com

संविधान सभा ने 9 दिसंबर 1946 को अपनी प्रथम बैठक के पश्चात् दो वर्ष, ग्यारह महीने और सत्रह दिनों तक कार्य किया। इसका अर्थ है कि डॉ. अंबेडकर को इन सभी दिनों में उपस्थित रहे। विधि के द्वारा राष्ट्र-निर्माण के क्रम में डॉ.अंबेडकर के नेतृत्व का चरण 1946 में तब शुरू हुआ जब वे संविधान सभा में प्रारूप समिति (ड्राफ्टिंग कमेटी) के अध्यक्ष बने। अंबेडकर का संविधान सभा में प्रवेश बहुत स्वाभाविक तरीके से नहीं हुआ था। प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में अंबेडकर ने न केवल विभिन्न लोकतांत्रिक-सिद्धांतों का प्रारूप तैयार करने का बीड़ा उठाया बल्कि संविधान सभा की बहसों में विविध धाराओं को बनाए रखने, उन्हें हटाने और उनमें आवश्यक संशोधन के लिए अपने दृष्टिकोण से संविधान सभा को समृद्ध किया।

भारत सदृश देश के लिए संविधान-निर्माण अत्यंत दुष्कर कार्य था जिसे सम्पूर्ण करने के लिए अत्यन्त असाधारण बुद्धि की आवश्यकता थी। अम्बेडकर ने अपने अथक परिश्रम से इस ऐतिहासिक कार्य को सम्भव बनाया। संविधान सभा के लिए सर बी.एन. राव द्वारा एक बुनियाद के रूप में जो कच्चा मसौदा प्रारूप समिति के कार्य हेतु तैयार किया गया था उसमें 243 अनुच्छेद और तेरह अनुसूचियाँ सम्मिलित थीं। संविधान के अंतिम प्रारूप में 395 अनुच्छेद और आठ अनुसूचियाँ सम्मिलित थीं। प्रारूप-संविधान पर प्रस्तुत संशोधनों की कुल संख्या लगभग 7,635 थी। इनमें से सदन में वास्तव में प्रस्तुत किए गए संशोधनों की संख्या 2,473 से अधिक थी। इसका अर्थ है कि डॉ. अंबेडकर ने सभी 7,635 संशोधनों का अध्ययन करके 5,162 संशोधनों को निरस्त किया तथा 2,473 संशोधनों को सम्मिलित कर हमारे संविधान का निर्माण किया। विधि के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण में अपनी भूमिका सुनिश्चित करने के लिए ही डॉ.अम्बेडकर ने पण्डित नेहरू के मंत्रिमंडल में भी प्रवेश किया और

स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री बने किंतु अक्टूबर 1951 में उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। देश के विधिमंत्री के रूप में बाबासाहेब अंबेडकर 'हिंदू कोड बिल' को कानून का रूप देना चाहते थे जिसका उद्देश्य समग्र रूप से हिंदू महिलाओं को सशक्त बनाना था। इस विधेयक की परिकल्पना अनेक प्रावधानों के माध्यम से हिंदू महिलाओं को सम्मानजनक और समान दर्जा प्रदान करने हेतु की गई थी। इसमें उत्तराधिकार तथा भरण-पोषण से संबंधित अधिकारों का प्रावधान था। दहेज के विरुद्ध भी विधिक प्रावधान किए गए थे। बहुविवाह के स्थान पर एकविवाह को वैध बनाया गया। हिंदू विवाह को संस्कार के बजाय एक अनुबंध के रूप में स्थापित किया गया। दत्तक-ग्रहण के मामले में पत्नी की सहमति को अनिवार्य बनाया जाना था। उन्होंने यह भी प्रस्तावित किया था कि पुत्र की भाँति पत्नी और पुत्री को भी क्रमशः पति और पिता की संपत्ति में अधिकार मिलना चाहिए।

समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व: समाज-निर्माण की बुनियाद

सामाज से राष्ट्र-निर्माण की संकल्पना में न्याय समाज की पहली अनिवार्यता है। न्याय केवल तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब समाज समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित हो। सामाजिक न्याय वह सिद्धांत है जिसमें व्यक्ति अपने प्रयासों को दूसरों के हित में समन्वित करते हैं। यह तभी संभव है जब मनुष्यों के साथ समानता का व्यवहार किया जाए। तथापि यह मानना पड़ता है कि यह स्थिति केवल तब संभव है, जब समाज में बंधुत्व की भावना विद्यमान हो। अतः समाज की स्थापना तीन मूलभूत सिद्धांतों— 'स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व'—के आधार पर होनी चाहिए।

आदर्श समाज की अपनी अवधारणा का विवेचन करते हुए अंबेडकर ने बल दिया कि—“...मेरा आदर्श समाज स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित होगा”।

डॉ. अंबेडकर कहा करते थे कि एक आदर्श समाज गतिशील होना चाहिए, जिसमें समाज के एक भाग में होने वाले परिवर्तनों को दूसरे भाग तक संप्रेषित करने के लिए पर्याप्त माध्यम उपलब्ध हों। आदर्श समाज में विभिन्न हितों का सचेत रूप से संप्रेषण और साझा होना आवश्यक है। अन्य विधियों एवं संगठनों के साथ विविध एवं मुक्त संपर्क और संबंध होने चाहिए। यही बंधुत्व है जो लोकतंत्र का ही अन्य नाम है। लोकतंत्र मात्र शासन-प्रणाली नहीं है बल्कि यह सहजीवन की एक मूलभूत पद्धति है, जिसमें संयुक्त एवं संप्रेषित अनुभवों का आदान-प्रदान होता है। यह मूलतः अनुयायियों के प्रति सम्मान और आदर की एक प्रवृत्ति है।

इसी क्रम में डॉ. अंबेडकर का विचार था कि एक समाज के रूप में हम समानता से भाग नहीं सकते क्योंकि यदि सामाजिक निकाय के लिए अपने सभी सदस्यों के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त करना उचित है तो यह केवल उन्हें यथासंभव समान बनाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। विधि के निर्माताओं और उन्हें लागू करने वाले लोगों को सभी मनुष्यों के साथ एक जैसा व्यवहार करना और यह इसलिए नहीं कि वे समान हैं बल्कि इसलिए कि समाज में वर्गीकरण और श्रेणीकरण किसी भी तरह से औचित्यपूर्ण नहीं है। समानता का सिद्धांत स्पष्ट रूप से भ्रामक है लेकिन समग्रता में देखें तो पता चलता है कि यह एकमात्र तरीका है जिससे एक समाज राष्ट्र बन सकता है। समानता को सुनिश्चित करने के लिए संविधान द्वारा किए गए प्राविधानों पर बहस करते लोगों को देखकर स्पष्ट दिखता है कि समानता एक अत्यंत व्यावहारिक जरूरत है और जिसके लिए एक अत्यंत व्यावहारिक परीक्षण की आवश्यकता होती है।



लोकतंत्र की स्थापना: राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लोकतन्त्र

डॉ. अंबेडकर के लिए न्याय केवल सिद्धांत या दार्शनिक और सैद्धांतिक प्रस्ताव ही नहीं थे बल्कि उन्होंने उन्हें व्यावहारिक रूप देने का भी प्रयास किया। यही कारण है कि भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद पदानुक्रमित समाज में उभरते लोकतंत्र के मद्देनजर सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए अंबेडकर ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को व्यवहार में लाने के तरीकों और साधनों पर चर्चा की जिन्हें किसी भी लोकतंत्र के मूलभूत सिद्धांत माना जाता था। इस संबंध में उन्होंने संविधान-सभा में भी तर्क दिया कि 'हमें केवल राजनीतिक लोकतंत्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारा राजनीतिक लोकतंत्र एक सामाजिक लोकतंत्र भी हो'। उनके लिए सामाजिक लोकतंत्र का अर्थ है जीवन जीने का एक ऐसा तरीका जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में मान्यता देता है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के इन सिद्धांतों को त्रिमूर्ति के अलग-अलग भागों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। बल्कि इन्हें एक साथ परस्पर स्वीकार किया जाना चाहिए। ये त्रिमूर्ति का एक ऐसा बंधन बनाते हैं कि यदि इन्हें अलग कर दिया जाए तो लोकतंत्र का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता; समानता को स्वतंत्रता से अलग नहीं किया जा सकता और न ही स्वतंत्रता और समानता को बंधुत्व से अलग किया जा सकता है।

समानता के बिना स्वतंत्रता कुछ लोगों को बहुतों पर वर्चस्व प्रदान करेगी।

स्वतंत्रता के बिना समानता व्यक्तिगत सक्रियता को समाप्त कर देगी। बंधुत्व के बिना स्वतंत्रता और समानता स्वाभाविक रूप से अस्तित्व में नहीं आ सकतीं... हमें इस तथ्य को स्वीकार करते हुए शुरुआत करनी होगी कि भारतीय समाज में दो चीजों का पूर्ण अभाव है। इनमें से एक है समानता। सामाजिक स्तर पर भारत में एक ऐसा समाज है जो श्रेणीबद्ध असमानता के सिद्धांत पर आधारित है श्रेणीबद्ध असमानता आशय है कुछ लोगों का उत्थान और दूसरों का पतन। आर्थिक स्तर पर हमारे पास एक ऐसा समाज है

जिसमें कुछ लोग अत्यन्त धनवान हैं जबकि बहुत से लोग घोर गरीबी में जीवन यापन करते हैं। अंत में उन्होंने भारतीयों को सामाजिक न्याय की सहायता से निरंतर असमानता की स्थितियों को समाप्त करने और उभरती समानता के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाने के तरीके सुझाए। उनके अपने शब्दों में “26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभासों से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में समानता होगी, और सामाजिक-आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हम पहचानेंगे एक व्यक्ति-एक वोट एक वोट एक मूल्य का सिद्धांत। हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में, हम कब तक इस विरोधाभासी जीवन को जीते रहेंगे? यदि हम इसे लंबे समय तक नकारते रहे, तो हम केवल अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डालेंगे। हमें इस विरोधाभास को दूर करना होगा। दूसरी बात जो हम चाहते हैं वह है बंधुत्व के सिद्धांत की मान्यता। बंधुत्व का क्या अर्थ है? बंधुत्व का अर्थ है भारतीयों के बीच साझा भाईचारे की भावना-यानी भारतीयों का एक राष्ट्र होना। यही वह सिद्धांत है जो सामाजिक जीवन को एकता और एकजुटता प्रदान करता है। इसे प्राप्त करना कठिन है।”

संवैधानिक उपायों के माध्यम से लोकतंत्र

अम्बेडकर संवैधानिक उपचारों के माध्यम से राष्ट्र के सपने को हासिल करने के हिमायती थे। वो कहते थे कि यदि हम लोकतंत्र को न केवल दिखावे में बल्कि वास्तविकता में भी बनाए रखना चाहते हैं तो हमें अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक तरीकों का दृढ़ता से पालन करना होगा। इसका अर्थ है कि हमें क्रांति के रक्तपातपूर्ण तरीकों को त्यागना होगा। इसका अर्थ है कि हमें सविनय अवज्ञा, असहयोग आंदोलन, असंवैधानिक सत्याग्रह जैसे तरीकों को त्यागना होगा। जब आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक तरीकों का कोई विकल्प नहीं बचा था तब असंवैधानिक तरीकों को अपनाने का पर्याप्त औचित्य था। लेकिन जहाँ संवैधानिक तरीके खुले हैं वहाँ इन असंवैधानिक तरीकों का कोई स्थान नहीं है। ये तरीके अराजकता के व्याकरण को ही उचित ठहराते हैं और जितनी जल्दी इन्हें त्याग दिया जाए उतना ही हमारे लिए बेहतर है।

यद्यपि आरंभ में अम्बेडकर नौकरशाही के माध्यम से पूर्व-वंचित समुदायों को न्याय दिलाने के प्रति संशय में थे परन्तु बाद में उन्होंने दलितों को इसमें अपना हिस्सा मांगने के लिए कहकर इसे ही प्राथमिकता दी।

तत्कालीन हिंदू सामाजिक व्यवस्था को देखते हुए अम्बेडकर ने पूर्व-अछूतों जैसे वंचित समूहों को न्याय न मिलने पर अपनी व्यथा व्यक्त की। इसीलिए उन्होंने एक बार कहा था यह तर्क दिया जा सकता है कि समान न्याय का सिद्धांत स्थापित व्यवस्था को पूरी तरह से ध्वस्त कर देगा। वास्तव में इसे कोई नुकसान नहीं हुआ है बल्कि यह व्यवस्था इसके बावजूद सुचारू रूप से चलती रही है। यह पूछा जा सकता है कि समान-न्याय का सिद्धांत प्रभावी क्यों नहीं हो पाया। इसका उत्तर सरल है। न्याय के सिद्धांत को प्रतिपादित करना एक बात है, उसे प्रभावी बनाना दूसरी बात। समान न्याय का सिद्धांत प्रभावी है या नहीं यह निश्चित रूप से सिविल सेवाओं की प्रकृति और चरित्र पर निर्भर करता है जिन्हें इस सिद्धांत को लागू करने का दायित्व सौंपा गया है। यदि सिविल सेवाएं अपने वर्गगत-पूर्वाग्रह के कारण पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाती हैं तो स्थापित व्यवस्था ही नई व्यवस्था की शत्रु बना रहेगा और एक बेहतर व्यवस्था कभी अस्तित्व में नहीं आ सकती।

डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक-न्याय के जिस दृष्टिकोण का प्रयोग संविधान-निर्माण के लिए किया है उसे पाँच रूपों में देखा जा सकता है: प्रथम- व्यक्तियों का स्वतंत्र और स्वायत्त विकास होना चाहिए; द्वितीय- समाज समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित होना चाहिए; तृतीय- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता पर आधारित सच्चे लोकतंत्र की स्थापना; चौथा- संवैधानिक उपायों के माध्यम से लोकतंत्र की स्थापना; और पाँचवाँ है राजनीतिक सत्ता पर तथाकथित उच्च वर्गों के एकाधिकार को समाप्त करना।

यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक न्याय के उपरोक्त सिद्धांतों को प्रतिपादित करके अम्बेडकर भारतीय समाज की मौजूदा सामाजिक-राजनीतिक संरचना का उन्मूलन करना चाहते थे जिससे सामान्य जनमानस के लिए प्रभावी रूप से सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। यह तर्क दिया जा सकता है कि उन्होंने इन सिद्धांतों को इसलिए प्रतिपादित किया होगा क्योंकि वे भारतीय समाज की प्रकृति से अवगत थे जिसमें जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक और यहां तक कि प्राकृतिक संसाधनों के अधिकार से भी वंचित रहा है। उनका मानना था कि आने वाले समय में राजनीतिक नेता या आम जनता वंचितों को सामाजिक न्याय दिलाने में रुचि नहीं रखेगी। इसलिए अम्बेडकर ने इन्हें भारत के संविधान में अत्यंत विस्तार से शामिल किया। जिससे वंचित और शोषित समूह को राष्ट्र के नागरिक के रूप में उनके मूलभूत अधिकारों,

विशेषाधिकारों और हकों की प्राप्ति हो सके। डॉ. अंबेडकर राष्ट्र-निर्माण के लिए पाँच महत्वपूर्ण तरीके सुझाए जो हैं (इतिहास में घटित अपमानजनक कृत्य का) विस्मरण (और उन्हें न दोहराए जाने का प्रण), वंचित वर्गों की स्वतंत्रता, शासक वर्गों के एकाधिकार का उन्मूलन और वंचित समूहों को स्व-प्रतिनिधित्व का अधिकार देना। साथ ही अंबेडकर ने यह भी तर्क दिया कि समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषकर पूर्व दास-वर्गों के

डॉ. भीमराव अंबेडकर का राष्ट्र-दर्शन

भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि एक निर्माणाधीन राष्ट्र है। जो राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है। डॉ. अंबेडकर ने अपने निजी अनुभवों और व्यावहारिक तथ्यों के आधार पर यह तर्क दिया कि राष्ट्र की अवधारणा भावनाओं और अभाव की वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों दोनों पर आधारित होना चाहिए। इसलिए उन्होंने राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद में अंतर किया। उन्होंने इस तथ्य पर भी बल दिया कि राष्ट्र के बिना बंधुत्व नहीं होगा और बंधुत्व के अभाव में समानता और स्वतंत्रता नहीं हो सकती। उनका मानना था कि बंधुत्व, समानता और स्वतंत्रता आपस में जुड़े हुए और एक दूसरे पर निर्भर हैं। यद्यपि उन्होंने बंधुत्व को समानता और स्वतंत्रता से अधिक महत्व दिया।

डॉ. अंबेडकर राष्ट्र-निर्माण के लिए पाँच महत्वपूर्ण तरीके सुझाए जो हैं (इतिहास में घटित अपमानजनक कृत्य का) विस्मरण (और उन्हें न दोहराए जाने का प्रण), वंचित वर्गों की स्वतंत्रता, शासक वर्गों के एकाधिकार का उन्मूलन और वंचित समूहों को स्व-प्रतिनिधित्व का अधिकार देना। साथ ही अंबेडकर ने यह भी तर्क दिया कि समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषकर पूर्व दास-वर्गों के अधिकारों को स्थापित किए बिना राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में उन्होंने पूर्व अछूतों (दलितों), अन्य पिछड़ा वर्ग, आदिवासियों, धार्मिक अल्पसंख्यकों और महिलाओं के स्व-प्रतिनिधित्व की वकालत की। इस अर्थ में हम राष्ट्र को उन लोगों के लिए मुक्ति के विचार के रूप में स्वीकार कर सकते हैं जो दोहरी विपत्ति से पीड़ित हैं - एक उपनिवेशवाद से और दूसरा जाति-आधारित पदानुक्रमित समाज से। अंबेडकर के विचारों में राष्ट्र के भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए पाँच उपायों पर नियमित कार्य किया जाना चाहिए पहला भारतीयों द्वारा आत्मनिरीक्षण दूसरा संवैधानिक उपचारों का पालन, तीसरा राजनीति में नायक पूजा का त्याग, चौथा राजनीतिक लोकतंत्र के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना, पाँचवाँ उपाय है लोकतंत्र को जन-सरकार में परिवर्तित करना।

डॉ. भीमराव अंबेडकर के लोकतंत्र और राष्ट्र विषयक दृष्टिकोण को देखने पर पता चलता है कि बाबा साहेब संविधान के साथ-साथ भारत राष्ट्र के भी शिल्पकार हैं।

संदर्भ

- कुमार, विवेक, डिकोडिंग अंबेडकर: आइडियाज़ ऑफ नेशन एंड नेशन बिल्डिंग। नई दिल्ली: मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2024.
- बी. आर. अंबेडकर, एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, 1936.
- अंबेडकर, बी. आर, हू वेयर द शूद्राज़? बॉम्बे: ठाकर एंड कंपनी, 1946.
- अंबेडकर, बी. आर, द अनटचेबल्स: हू वेयर दे एंड व्हाय दे बिकेम अनटचेबल्स? 1948.
- अंबेडकर, बी. आर, स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज़, 1947.
- क्रिस्टोफ जैफ़्रेलोट (सम्पा.), नेशनलिज़्म विदाउट अ नेशन, नई दिल्ली: मनोहर, 2002.
- टी. के. ऊम्मेन, "कॉन्सेप्चुअलाइज़िंग नेशन एंड नेशनलिटी इन साउथ एशिया" 2000.